2. दूसरा अध्याय:

लोक साहित्य: स्वरूप एवं वर्गीकरण

2.1 अर्थ एवं स्वरूप:

भारत की अधिकतम् जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जिसे "लोक" की संज्ञा दी जाती है । "लोक" जिन शब्दों अथवा जिस भाषा में अपनी मनोवृतियों का उद्गार संप्रेषित करता है, साधारण जन जिस भाषा में गाता, रोता, हँसता और खेलता है, वही "लोक-साहित्य" हैं । लोक साहित्य में लोक की अभिव्यक्ति सर्वेसर्वा होती है । लोक साहित्य मानवीय-जीवन के परिवेश का सामान्य ही नहीं, अपितु परम्परागत् स्वरूप एवं संस्कृति का भी आकलन करने की क्षमता रखता है । लोक साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करने से पूर्व "लोक" शब्द के स्वरूप पर दृष्टिपात् करना आवश्यक हो जाता है -

"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीय, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है, जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है ।"[1]

"लोक से अभिप्राय कोई ऐसा स्थान जिसका बोध देखने से होता है, जगह, जगत् या संसार, विश्व का कोई विशिष्ट भाग या स्थान जिसमें कुछ अलग प्रकार के जीव या प्राणी रहते हैं - जीवलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक, मनुष्य लोक आदि से लिया जा सकता है ।"[2]

---

1. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश-1 (वाराणसी: ज्ञान मण्डल प्रकाशन लिमिटेड, सं0 2020), पृ0 686
2. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (प्रयाग: हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, 1965), पृ0 516

"लोक विश्व का एक भाग, भुवन संसार, पृथ्वी, मानव जाति, समाज, प्रजा, सामान्य लोग, जनता, समूह, भूभाग, प्रांत, निवास, स्थान, दिशा, सांसारिक व्यवहार इत्यादि ।"[3]

लोक स्थान विशेष जिसका बोध प्राणो को हो, उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं - इहलोक और परलोक, (पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई है), संसार, जगत, स्थान निवास स्थान, प्रदेश दिशा, लोग, जन, समाज, प्राणी आदि के अर्थ को स्पष्ट करता है ।"[4]

वास्तव में लोक से अभिप्राय व्यक्ति और समाज दोनों ही अर्थों में लिया जा सकता है । व्यष्टि, समष्टि अथवा जनसाधारण लोक के ही पर्यायवाची हैं ।

विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक साहित्य के अर्थ और स्वरूप को निम्न-वत् मतों द्वारा स्पष्ट किया गया है:

"लोक की अभिव्यक्ति ही लोक-साहित्य है । संस्कृत में इसका अर्थ वह नहीं था जो आज लिया जाता है । वहाँ पहले इसका अर्थ "काव्यशास्त्र" लिया जाता था । आज यह शब्द अंग्रेजी लिटरेचर का पर्याय है । - - - - लिटरेचर के पर्यायवाची "साहित्य" शब्द के अन्तर्गत ऐसी कृतियाँ ही आ सकेंगी जिन्हें लिखा पढ़ा जा सके । किन्तु सभी जानते हैं कि लिटरेचर अथवा साहित्य की आत्मा वर्णमाला से बँधी हुई नहीं है । - - एक गीत महादेवी वर्मा लिखती या गाती हैं, एक गीत गाँव की बुढ़िया केवल गाती है । दोनों गीत हैं । आज की साहित्य की परिभाषा में दोनों को ही स्थान देना

---

3. मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, सं० ज्ञानशब्द कोश (बनारस: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं० 2013), पृ० 712

4. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर (काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, सं० 2014), पृ० 877

होगा । - - - मनुष्य की वह समस्त सार्थक अभिव्यक्ति जो लिखित हो, या मौखिक हो, - - - ऐसी समस्त लोक अभिव्यक्ति लोक-साहित्य के अन्तर्गत होगी ।"[5]

"लोक साहित्य वह लोक रंजनी साहित्य है, जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है ।"[6]

"लोक साहित्य एक परम्परानिधि है जिसे लेखनी ने न कभी सँवारा है, न सजाया है और न कदाचित् कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है । यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है । सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा, परन्तु लोक साहित्य का स्त्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहमान है ।"[7]

"किसी विशेष अवसर, स्थान या परिस्थिति में जनसाधारण के द्वारा अपने हृदय और मस्तिष्क में संचित भाव और अनुभव सामग्री के गद्य अथवा पद्य में मौखिक प्रकाशन को लोकसाहित्य कहते हैं ।"[8]

"लोक साहित्य में विशेषत: जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती हैं ।"[9]

---

5. सत्येन्द्र, लोकसाहित्य विज्ञान (आगरा: शिवलाल अग्रवाल न0 3 कम्पनी, 1971), पृ0 3
6. सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोकगाथा (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान अकादमी, 1950), पृ0 5, (ड.)
7. शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान अकादमी, 1960), पृ0 20
8. बैरिस्टर सिंह यादव, हिन्दी लोक साहित्य में हास्य और व्यंग्य (लखनऊ: राष्ट्रीय साहित्य सदन, 1978), पृ0 6
9. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोकसाहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान अकादमी, 1965), पृ0 4

"ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोक-चित्र से सोधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती हैं वे ही लोक-साहित्य, लोक-शिल्प, लोक-नाट्य, लोक-कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं । लोक-चित्र से तात्पर्य उस जनता के चित्र से है जो परम्परा-प्रथित और बौद्धिक विवेचना परक शास्त्रों और उन पर की गई टीका- टिप्पणियों के साहित्य से अपरिचित होता है ।"[10]

अस्तु लोक-साहित्य पुस्तक-ज्ञान से पृथक् रहने वाले जनमानस की अभिव्यक्ति का साहित्य है ।

"लोक साहित्य की अर्थगत् व्याप्ति बड़ी ही विशाल है । यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा निर्मित नहीं होता । उसके पीछे परम्परा वर्तमान रहती है, जिसका सम्बन्ध समाज से रहता है । उसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है । वे सारी मौखिक अभिव्यक्तियाँ, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के कटघरे के बाहर की हैं तथा जो समान रूप से समाज की आत्मा को व्यक्त करने की क्षमता रखती है, लोक साहित्य की श्रेणी में आती हैं ।"[11]

"हमारे यहाँ यह लोक-साहित्य शब्द एक व्यापक भाव की व्यंजना करता आया है । मानव के संपूर्ण रीति-रिवाज, आचार-विचार और उसके व्यवहार का स्वरूप जो किसी प्रकार के बंधनों से जकड़ा नहीं होता वरन् जिन व्यवहारों के द्वारा मानव स्वतन्त्र रूप से एक आत्म-संतोष प्राप्त करता है - - - आदि इस लोक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं ।"[12]

---

10. हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क (प्रयाग हिन्दी साहित्य मन्दिर, 1954), पृ० 206
11. सम्पत्ति अर्याणी, मगही लोकसाहित्य (पटना: हिन्दी साहित्य संसार, 1965), पा० 1
12. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य (दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1971), पृ० 4

"सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान, जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे लोक-साहित्य कहते हैं।"[13]

वस्तुतः भारतीय जन-जीवन अनादिकाल से ही काव्यमय रहा है, जिसका मधुर संगीत अपनी तरंग गति से सर्वप्रथम लोक-साहित्य में ही तरंगित हुआ है। हमारे जीवन के रीति-रिवाज, आचार-विचार, विधि-विधान, मान्यता-विश्वास, संस्कार-अनुष्ठान तथा प्रथाएँ लोक-साहित्य में अपने सहज एवं स्वाभाविक रूप में निसृत हुई हैं। लोक-साहित्य ही जन के यथार्थ जीवन के स्वरूप को स्वाभाविकता से संप्रेषित करता है। अतः संक्षिप्त शब्दों में कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य जन द्वारा रचित जन का साहित्य है। यह साहित्य लोक-मानस का ऐसा साहित्य है जो युग युगान्तर से साधारण जन के मध्य प्रवाहित है, यह किसी व्यक्ति-विशेष की रचना न होकर समस्त जन-मन की रचना होती है।

2.2 उद्भव एवं विकास:

आरम्भ से ही लोकसाहित्य के उद्भव एवं विकास के विषय में विद्वानों में मतवैभिन्नय रहा है। लोक साहित्य की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसके रचयिता कौन हैं ? इत्यादि विवादास्पद प्रश्न समय-समय पर उठाए जाते रहे हैं, जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। सामान्यतः लोक-साहित्य से अभिप्राय लोगों का साहित्य, लोगों द्वारा निर्मित, लोगों के लिए साहित्य ही, लोक साहित्य कहा जा सकता है।

---

13. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका (इलाहाबाद: साहित्य भवन, 1957), पृ0 25

किसी भी क्षेत्र के लोकसाहित्य के अध्ययन, अन्वेषण एवं विश्लेषण करने से यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है कि लोक साहित्य का उद्गम किसी भी व्यक्ति और समूह के सहयोग से होता है । लोक-साहित्य का सर्जक अज्ञात होता है तथा यह मौखिक रूप में जन् में प्रचलित रहता है ।

यहाँ पर लोक साहित्य के उद्भव और विकास को लेकर संक्षिप में विचार करना उचित जान पड़ता है -

"लोक साहित्य, आदिम से लेकर आधुनिक मानव तक, मौखिक परम्परा में अविरत रहा है, और आज भी इसकी प्रामाणिकता का विशिष्ट चिन्ह मौखिकता ही है । आदिम मानव के पास प्रकाशन अथवा प्रसारण की आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं, वह अपने सहज एवं नैसर्गिक विचारों की अभिव्यक्ति मौखिक रूप में ही करता था, जो कालान्तर में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक परम्परा में ही संप्रेषित होते रहे । अतः यह निःसंकोच रूप से स्वीकार करना होगा कि लिपिबद्ध एवं प्रकाशित पन्नों से अधिक, लोक साहित्य के प्रबल संवाहक, अनुकरणात्मक एवं मौखिक तत्व ही रहे हैं ।"[1]

"लोक साहित्य की रचनाएँ अज्ञात, बेनाम अथवा अस्पष्ट इस कारण हैं, कि अधिकत्तर लेखकों के नाम उद्घाटित नहीं हुए हैं, उनकी खोज नहीं हुई है, क्योंकि अधिकांश वे लिखे ही नहीं गए थे, प्रत्युत जनता की स्मृतियों में ही प्रायः सुरक्षित है ।"[2]

---

1. जवाहर लाल हण्डू, कश्मीरी और हिन्दी के लोकगीतः एक तुलनात्मक अध्ययन (कुरूक्षेत्रः विशाल पब्लिकेशनज, 1971), पृ० 7
2. "Works of folklore are anonymous for the reason that the names of authors, in the vast majority of cases have not been revealed, have not been discovered, because for the greater part, they were not written down, but were preserved in the memories of the people." Smith (Translator) Russian Folklore (New Macmillion & Co., 1956), P. XII.

मानव जीवन के आरम्भ से ही लोक साहित्य के अविर्भाव को माना जा सकता है और इसी कारण मानव जाति के विकास के साथ ही इसका भी विकास हुआ है ।

लोक साहित्य के क्षेत्र को अत्यंत विकसित मानते हुए उपाध्याय ने मानव-जीवन की विविध अनुभूतियों, मान्यताओं, परम्पराओं, लोक-विश्वासों को लोक साहित्य की परिधि में समाविष्ट किया है :- "लोक साहित्य का विस्तार अत्यंत व्यापक है । साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है, उन सबको लोकसाहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है । - - - इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री, पुरूष, बच्चे, जवान तथा बूढ़े लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है ।"[3]

लोक-साहित्य का क्षेत्र या परिधि विस्तृत है । "यह एक मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो, पर आज जिसे सामान्य लोक-समूह अपना मानता है और जिसमें युग-युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, इसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है ।"[4]

वास्तव में लोक-साहित्य का उद्भव मानुष-जाति की उत्पत्ति से ही माना जा सकता है । इसका विकास भी लोक-मानुष के विकास के साथ ही हुआ है । लोक-साहित्य किसी एक युग में किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा नहीं रचा गया, अपितु युग-युगान्तर से मानव जाति द्वारा मौखिक रूप में रचा गया है तथा रचा जा रहा है । लोक से लोक-साहित्य का अस्तित्व जुड़ा हुआ है । आदिम मनुष्य से लेकर आधुनातन मनुष्य ने सुख-दुःख की जो अनुभूतियाँ अनुभव की,

---

3. उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद: साहित्य भवन, प्रा० लिमिटेड, 1957), पृ० 24
4. धीरेन्द्र वर्मा, सं०, हिन्दी साहित्य कोश (बनारस: ज्ञान मण्डल लिमिटेड, सं० 2015), पृ० 682

वही लोकसाहित्य के रूप में जन-मन में मौखिक रूप में मुखरित हुई ।

2.3 महत्व एवं विशेषताएँ:

सर्वप्रथम लोक-साहित्य का अध्ययन विभिन्न जातियों के विषय में संपूर्ण जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा-वृत्ति से प्रेरित होकर हुआ । किसी भी देश की प्राचीन संस्कृति को समझने के लिए वहाँ के लोकसाहित्य का अध्ययन एवंविवेचन करना अनिवार्य है । विभिन्न विद्वानों ने लोकसाहित्य के महत्व को स्वीकारते हुए, इसकी निम्न विशेषताओं को स्वीकार किया है :-

लोकसाहित्य की उपयोगिता एवं विशेषताओं के सम्बन्ध में यादव के विचार द्रष्टव्य है:- "लोक साहित्य मौखिक परम्परा से विकसनशील प्रक्रिया में रहता है, उसकी शैली अनलंकृत होती है, उसका रचयिता एवं रचनाकाल अज्ञात रहता है । लोकसाहित्य प्रचार या उपदेश की प्रवृत्ति से दूर होता है, सभी धर्म-सम्प्रदाओं के प्रति सहिष्णुता उसमें मिलती है ।"[1]

इस विषय में उपाध्याय का मत भी अवलोकनीय है -"लोकसाहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है । लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ ? इसमें जिस समाज का चित्रण किया गया है, वह स्वस्थ, सदाचारी तथा धर्मभीरू है - - - धर्म, समाज, नीति का यही मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है ।"[2]

अमर ने लोक साहित्य की विशेषताओं पर इस प्रकार प्रकाश डाला है- "लोकसाहित्य लोक-मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । यह बहुधा

---

1. शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य(प्रयाग: हिन्दुस्तान एकेडमी, 1960), पृ0 39-42 ।
2. कृष्ण उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका(इलाहाबाद: साहित्य प्राईवेट लिमिटेड, 1977), पृ0 27।

अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है । इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है । लोक का प्राणी जो कुछ कहता-सुनता है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह घुल-मिलकर कर ही कहता है । संभवतः लोकसाहित्य लोक-संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब भी होता है । अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल, लोकसाहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है । लोक भाषा के माध्यम से लोक-चिन्ता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोकसाहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है ।"[3]

अनिल लोकसाहित्य के महत्व एवं विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं :- "लोक साहित्य एक गतिशील (डायनामिक) विज्ञान है । इनमें व्यक्त परम्पराएँ काल-प्रवाह में बह नहीं जातीं, वे नए-नए रूपों में प्रकट होती है । समय-विशेष में लोक-साहित्य का जन्म अवश्य होता है पर उसके पश्चात् वह सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सार्वजनीन बन जाता है । लोक-साहित्य को हम उस वन्य-वृक्ष के समान मान सकते हैं । जिसकी जड़ें बहुत गहरी धँसी हुई हैं पर वह निरन्तर रूप से नई शाखाएँ, नई पत्तियाँ और नए फूल प्रसूत किया करता है । विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए तथा समाज के आन्तरिक विधान के तन्तुओं की व्याख्या करने के लिए लोक-साहित्य का सांगोपांग अध्ययन परमावश्यक है ।"[4]

सत्येन्द्र लोकसाहित्य और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध मानते हुए इनके महत्व को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :- "लोकसाहित्य और समाज का सम्बन्ध

---

3. रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोक तत्व (दिल्ली: भरती साहित्य मन्दिर, 1965), पृ० 5
4. सत्तराम अनिल, कन्नौजी लोकसाहित्य (दिल्ली: अभिनव प्रकाशन, 1975), पृ० 32

इसलिए निर्विवाद है कि लोक और समाज परम्परावलम्बी हैं । किसी भी युग में लोक बिना समाज केऔर समाज बिना लोक के नहीं हो सकता ।"[5]

"लोक साहित्य केअध्ययन से किसी देश या जाति की सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलती है । किसी संस्कृति-विशेष के उत्थान पतन विषयक उतार-चढ़ावों का जितना सफल अंकन लोक-साहित्य में रहता है, उतना अंयत्र नहीं । किसी देश की संस्कृति की जड़े अतीत में रहती हैं, उनका स्पष्ट चित्र कहाँ देखना हो तो उस देश के लोक-साहित्य का अध्ययन करना चाहिए ।"[6]

किसी प्रदेश या क्षेत्र के सांस्कृतिक इतिहास को जानने के लिए अनेक महत्वपूर्ण तथ्य एवं सत्य लोकसाहित्य से ही प्राप्त होते हैं । यादव के विचार इस सन्दर्भ में उचित प्रतीत होते हैं - "विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गए हैं वहाँ उसे तमसाच्छन्न स्थिति में लोकसाहित्य को दिशा-निर्देश करता है ।"[7]

लोकसाहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए उपादेयता तथा महत्ता के विषय में उपाध्याय के विचार महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं - "लोकसाहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना

---

5. सत्येन्द्र गुप्त, लोक-साहित्य विज्ञान (आगरा: शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1971), पृ० 500
6. श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धान्त और प्रयोग (आगरा: विनोद कुमार मन्दिर, 1977), पृ० 284
7. शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान एकेडमी, 1960), पृ० 43

अन्यत्र नहीं । सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोकसाहित्य का अध्ययन करना चाहिए । - - - उन लोकगीतों, गाथाओं, और कथाओं में मनुष्यों के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान और रीति-रिवाज का सच्चा चित्र देखने में मिलता है ।"[8]

"किसी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक-साहित्य का महत्व अत्याधिक है - - - इस मौखिक साहित्य में धर्म, समाज तथा सदाचार सम्बन्धी अमूल्य सामग्री भरी पड़ी है । इसके साथ ही स्थानीय इतिहास और भूगोल सम्बन्धी बातें भी उपलब्ध होती हैं । भाषा शास्त्री के लिए तो यह साहित्य रत्नाकर के समान है, जिसमें गोता लगाने पर उसे अनेक अनमोल मोती प्राप्त हो सकते हैं ।"[9]

वस्तुतः लोक-साहित्य में लोक के विगत, वर्तमान तथा आगत-जीवन की अनुभूतियाँ संरक्षित हैं । लोकसाहित्य का महत्व शाश्वत एवं स्थिर है । इसे समय-विशेष की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है, यह जन-मन में निरन्तर गतिशील रहता है । किसी भी क्षेत्र तथा जाति के इतिहास, संस्कृति, रीति-रिवाज, अन्ध-विश्वास, मनोवृत्तियों का सांगोपांग परिचय लोक-साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान से शोधित किया जा सकता है । साहित्य यदि समाज का दर्पण कहलाता है, तो स्वच्छ, स्पष्ट, निरलंकार एवं विशुद्ध प्रतिबिम्ब के लिए लोक-साहित्य का अवलोकन करना ही आवश्यक है ।

2.4 वर्गीकरण:

जिस प्रकार किसी भी साहित्य को गद्य और पद्य दो वर्गों में विभक्त किया जाता है, उसी प्रकार लोक साहित्य को भी गद्य और पद्य - इन दो वर्गों

---

8. कृष्ण उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद: साहित्य भवन प्रा०लि० 1977), पृ० 73

9. -वही- -वही- पृ० 316

में ही वर्गीकृत किया जाता है । साहित्य और लोकसाहित्य में कुछ अन्तर इस कारण से है कि लोकसाहित्य में साहित्य की भाँति आधुनिक विधाएँ जैसे- उपन्यास, कहानी, संस्मरण, एकांकी, रेखाचित्र व रिपोर्ताज इत्यादि नहीं मिलती है ।

लोकसाहित्य में गद्य के अन्तर्गत लोक-जीवन में प्रचलित लोक-कथाओं, लोकोक्तियों तथा मुहावरों को लिया जा सकता है ।

लोकसाहित्य में पद्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोक-गाथाएँ तथा लोक नाट्य इत्यादि लिए जा सकते हैं । लोक साहित्य अधिकतर पद्यबद्ध रूप में ही जन-जीवन में प्रचलित है ।

लोकसाहित्य को लोक-जीवन का दर्पण कहा जाए, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी । लोकसाहित्य जन के हृदय का सहज उद्गार है, साधारण जन जो कुछ सोचता है, अनुभव करता है, वही अनुभूति उनके लोक-साहित्य में अवलोकित होती है । ग्रामीण लोग विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं और विभिन्न अवसरों में गीत गा गाकर अपना तथा समाज का मनोरंजन करते हैं । लोक-समाज उपदेशात्मक कथाओं, व स्वांगों (लोक नाट्य) व्यंग्यात्मक लोकोक्तियों तथा भावपूर्ण मुहावरों का प्रयोग कर अपने विचार, चिन्तन तथा भावनाओं को व्यक्त करता है ।

शर्मा ने लोकसाहित्य की निम्नस्थ विधाएँ स्वीकार की हैं :-

1. "लोकगाथा
2. लोकगीत
3. लोक नाट्य
4. लोक कथा
5. प्रकीर्ण साहित्य ।"[1]

---

1. श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धान्त और प्रयोग (आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 1973), पृ0 37

उपाध्याय ने भी लोकसाहित्य को पाँच भागों में ही विभक्त किया है :-

1. "लोकगीत
2. लोकगाथा
3. लोक-कथा
4. लोक-नाट्य
5. लोक सुभाषित ।"[2]

हण्डू नेलोक साहित्य के निम्नस्थ पाँच भेद ही माने हैं :-

1. "लोक गाथा
2. लोक गीत
3. लोक-नाट्य
4. लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ
5. लोक-गाथा ।"[3]

रोहतगी ने लोकसाहित्य को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया है :-

1. "लोकगीत
2. गाथाएँ
3. लोक कथाएँ, लोरियाँ, बुझौअल
4. लोकमंच, नौटंकी, नृत्य आदि
5. लोकोक्तियाँ, मुहाविरे व पहेली और

---

2. कृष्ण देव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद : साहित्य भवन प्रा०लि०, 1977), पृ० 57

3. जवाहर लाल हण्डू, काश्मीरी हिन्दी के लोकगीत : एक तुलनात्मक अध्ययन (कुरूक्षेत्र : विशाल पब्लिकेशनज़, 1971), पृ० 5

6. लोक-विश्वास, टोने-टोटके, टकोसले, व्रत-उपवास, अनुष्ठान आदि ।"[4]

उपर्युक्त विभाजन में प्रथम पाँच प्रकारतो अन्य विद्वानों के द्वारा किए गए विभाजन से मेल खाते हैं - केवल छठा भाग पृथक् दृष्टिगत् होता है ।

विभिन्न विद्वानों ने लोक-साहित्य को प्रायः एक जैसा ही विभाजित किया है, केवल नामकरण में किंचित अन्तर दृष्टिगत् होता है । सामान्यतः लोक साहित्य को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. लोकगीत (मुक्तक काव्य)
2. लोकगाथा (प्रबन्ध काव्य)
3. लोककथा या कहानी
4. लोकनाट्क या स्वाँग
5. लोक सुभाषित या लोकोक्तियाँ

2.4.1 लोकगीत:

लोकगीत लोकसाहित्य का महत्वपूर्ण अंग है । लोकगीतों में साधारण जन की भावनाएँ निहित रहती हैं । लोकगीत अंग्रेजी के "फॉकसॉग" का पर्यायवाची शब्द माना जाता है । "फॉक" से अभिप्राय लोक, जन तथा ग्राम से लिया जा सकता है जबकि "सॉग" गीत का पर्याय है ।

व्यावहारिक हिन्दी कोश में लोक तथा लोक-गीत का अर्थ निम्न से लिया गया है - "संसार, जगत्, लोग, जनसाधारण तथा सर्वसाधारण ।

---

4. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोकसाहित्य (दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1971), पृ0 6

लोक-गीत वे गीत जिन्हें लोग परम्परा से गाते चले आ रहे हों, जो प्रायः बोलचाल की भाषा में होते हैं ।"[1]

जनसामान्य द्वारा बोलचाल की भाषा में रचित गीत ही लोकगीत कहलाते हैं । इन गीतों में प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं जन-सभ्यता का अवलोकन होता है । लोकगीत जनमानस के हृदय से निसृत भावनाएँ हैं, जिनकी लोक साहित्य में विशेष महत्ता है ।

लोकगीत के अर्थ एवं स्वरूप पर विस्तार से विचार एवं विवेचन चौथे अध्याय के अन्तर्गत किया गया है ।

2.4.2 लोकगाथा:

लोकगाथा लोकसाहित्य की विधा है । अंग्रेजी में "बैलेड" शब्द का प्रयोग लोकगाथा के लिए किया जाता है । लोक-गाथा शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न अंग्रेज विद्वानों ने लोकगाथा की निम्न परिभाषाएँ दी हैं :-

"बैलेड" वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोक कंठ में विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूप-विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती हैं, जिनका प्रचार जनसाधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है ।"[1]

"सर्वप्रथम गाथा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है - यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा उस समय प्रचलित थी । इनके गाने वालों को "गाथिन" कहा जाता था ।"[2]

---

1. भोलानाथ तिवारी, व्यावहारिक हिन्दी शब्द कोश (दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1985), पृ0 277

1. श्रीरामशर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धांत और प्रयोग (आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 73), पृ0 38

2. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ., हिन्दी साहित्य कोश (बनारस: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं. 2015), पृ. 258

"हिन्दी में यह शब्द वृतांत या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख था संकेत होने के कारण कालान्तर में यह शब्द आख्यान कहानी या जीवनी-वृतांत के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है।"[3]

"लोक गाथा लम्बा कथात्मक गीत होता है। यह अंग्रेजी के "बैलेड" शब्द का समानार्थी है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग चित्रण होता है तथा कथानक प्रधान होता है। यह आकार में साधारण मुक्तक गीतों से बड़ा होता है। कथाक्रम होने के कारण यह अधिक रोचक और सजीव होता है। इसको गाने की एक विशेष परम्परा होती है तथा इसका गायन सावन, होली, विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर ही होता है। इसके कथा-तत्वों में असाधारण कृत्यों तथा व्यक्तियों का वर्णन रहता है। यह लोकगाथाएँ इतनी विशद तथा विविधता लिए हुए हैं कि इनमें लोकज्ञान का अनन्त-कोश भर गया है। इनमें प्राचीन रीतियों के अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है।"[4]

"लोकगाथाएँ वस्तु-व्यंजक, लोक कंठ पर अवस्थित या उत्पन्न, यथार्थ चित्रण का प्राधान्य, भावात्मकता, परम्परित प्रेम का सहज रूप और कल्पना-गत् सरलता का आधिक्य, नैसर्गिकता और भाषा एवं विचारों की सरलता, अलंकारों का अभाव, कतिपय लोक अलंकारों, कहावतों, मुहावरों की आवृत्ति, सरल छंद का प्रयोग, गेयता की विद्यमानता किसी लघु या दीर्घ सूत्री कथा की अभिव्यक्ति होती है।"[5]

---

3. धीरेन्द्र वर्मा सं0, हिन्दी साहित्य कोश (बनारस: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं0 2015), पृ0 259

4. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक-साहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी एकेडमी, 1964), पृ0 237

5. श्री राम शर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धांत और प्रयोग (आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, 1973), पृ0 39

लोकगाथाओं में संपूर्ण लोक-जीवन की अभिव्यंजना होती है । उत्सव तथा अन्य विशेष अवसरों के लिए प्राचीन काल से ही लोकगाथाओं की रचनाएँ की जा रही हैं । इनमें सत्य घटनाओं की स्वाभाविकता तथा गतिशीलता रहती है । लोकगाथाएँ परम्परागत रूप से प्रत्येक काल तथा प्रत्येक देश के लोगों द्वारा बड़े चाव से श्रवण की जाती तथा गायी जाती हैं । ये गाथाएँ प्राचीन सामाजिक चेतना तथा आदर्शत्व को प्रस्तुत करती हैं ।

विशेषतः लोकगाथाओं में वीरता, शौर्य, उत्साह, रहस्य, रोमाञ्च इत्यादि विषयों का प्राधान्य रहता है । लोकगाथाओं का कथानक लम्बा होता है । इसमें अधिकत्तर किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग चित्रण होता है । यह मुक्तक गीतों से विस्तृत होता है । इसकी कथावस्तु रोचक एवं सजीवता लिए होती है । इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह किन्हीं विशेष उत्सवों या अवसरों पर गायी जाती हैं । इन गाथाओं में हमारा प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति मिलती है । लोक-ज्ञान का अनन्तर भण्डार इन गाथाओं में ढूँढा जा सकता है ।

2.4.3 लोककथा:-
======

लोक-साहित्य में लोककथाओं की भी विशेष महत्ता है । ये कथाएँ अपनी सहजता, सरलता तथा लोकप्रियता के कारण विशिष्ट स्थान रखती हैं । लोक-जीवन में मनाए जाने वाले व्रत-त्यौहारों आदि की कथाएँ प्रचलित हैं, जिन्हें इन अवसरों पर एक-दूसरे से श्रवण किया जाता है । प्रचुरता और व्यापकता की दृष्टि से इनका अत्याधिक मूल्य है । विभिन्न विद्वानों ने लोक कथा के विषय में अपने मत व्यक्त किएहैं :-

"कहानी समस्त वाङ्मय की आधार है । मौलिक या लिखित साहित्य का कोई रूप ले लें तो उसके मूल में कोई न कोई सूक्ष्म कथा अवश्य मिलेगी । यह कहना अयुक्त न होगा कि मानव की विश्व के व्यापारों के प्रति जो

प्रथमाभिव्यक्ति वाचिक या कायिक हुई होगी वह एक कहानी रही होगी । "मैं" और "तुम" इन दो शब्दों में भी एक कहानी है ।"[1]

"इन कथाओं के साथ एक परम्परा भी जुड़ी होती है । इसी से हम कह सकते है कि लोक-कथा वह है जिसमें लोकमानस का तत्व निहित होता है और साथ ही एक परम्परा जुड़ी रहती है । इस प्रकार की लोक-गाथा का सम्बन्ध प्रायः किसी धर्मगाथा या पुराण कथा से रहता है ।"[2]

"लोक-कथाओं में प्रेम का अभिन्न पुट, अश्लील शृंगार का अभाव, मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर-साहचर्य, मंगल कामना की भावना, संयोग में कथाओं का अन्त, रहस्य, रोमान्च एवं आलौकिकता की प्रधानता, उत्सुकता को भावना और वर्णन की स्वाभाविकता होती है ।"[3]

"लोक-कथाएँ लोक-जीवन की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियाँ है, जिनका लोक-साहित्य के अध्ययन में अपना एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है । ये लोक-कथाएँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श करती हुई विविध और व्यापक रूप से हमारे सामने आती है ।"[4]

"लोक-मानस ज्ञान को कहानी के रूप में ही स्वीकार करता है । जो ज्ञान कहानी के रूप में सरल नहीं वह लोकमानस में नहीं पलता । मानव जाति बुद्धि का कितना ही विकास कर ले, वह प्रत्येक नईपीढ़ी में बाल-भाव की शिक्षा-दीक्षा, रूचि और विचार का एक मात्र आश्रय कहानी है ।"[5]

---

1. शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य (प्रयागः हिन्दुस्तान एकेडमी, 1960), पृ० 337
2. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (बनारसः ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं० 2015), पृ० 357
3. कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबादः साहित्य भवन प्रा०लिमिटेड, 1970), पृ० 168
4. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोकसाहित्य (दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1971), पृ० 32
5. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोक-साहित्य (इलाहाबादः हिन्दुस्तान

"मानस शास्त्र के तत्वज्ञों का कहना है कि मानव मन में जो शाश्वत बाल-भाव समाया रहता है, उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी भावाभिव्यक्ति कथा ही है।"[6]

लोक-कथा मौखिक रूप में जन-मन में प्राचीन काल से लेकर अब तक प्रवाहित है। अलिखित होने के कारण यह परिवर्तनशील है। अतः यह काल तथा क्षेत्रानुसार अपने मौलिक तथा यथार्थ रूप से भिन्नता लिए होती है। लोकसाहित्य में लोकगीतों के पश्चात् लोककथाओं को ही विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अतः कहा जा सकता है कि लोककथा जनसाधारण के मनोरंजन एवं ज्ञान वृद्धि का सरल एवं प्रमुख साधन है। इन कथाओं अथवा कहानियोंमें मानवीय जीवन के धार्मिक विश्वास, कल्पना एवं आदर्शों का संगम है।

2.4.4 लोकनाटक:-

लोकनाटक लोक-साहित्य का मुख्य अंग है। विभिन्न रोचक कथानकों पर आधारित लोकनाटक लोकसाहित्य की अमर कृतियाँ हैं। लोक-नाटक अधिकतर गीति-पद्धति से खेले जाते हैं। ये नाटक ग्रामीण जन के अनुरंजन के विशेष आधार है।

शर्मा के मतानुसार "लोक-नाट्य लोकसाहित्य की वह विधा है जो संवादों के माध्यम से (भले ही वे गीतात्मक हों) किसी रोचक कथा-प्रसंग को प्रस्तुत करके लोक का मनोरंजन करती है। जहाँ तक इस विधा की विशेषताओं का प्रश्न है, कहना न होगा कि इसको कथात्मकता के आधार पर, गेयता के आधार पर लोक-गीतों से अलग किया जा सकता है। रूपात्मक विशिष्टता के आधार पर तो इतना स्पष्ट है कि इसमें संवादों के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता है, जबकि लोकसाहित्य की अन्य विधाओं में संवादात्मकता नहीं होती।"[1]

---

6. सत्यव्रत अवस्थी, लोकसाहित्य की भूमिका (प्रयाग: रामदयाल अग्रवाल, 1954), पृ० 71।

1. श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धांत और प्रयोग (आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 1973), पृ० 42

"लोक-नाट्य से हमारा तात्पर्य उन नाटकों से है, जिनके अभिनय के लिए रंगमंच और प्रसाधन की तैयारी नहीं करनी पड़ती । इनमें संगीत प्रधान होता है । लोक-नाट्यों का जन-जीवन में एक विशेष महत्त्व है । विशेषतया लोक-समाज में उल्लास के क्षणों को इनके द्वारा ही उचित मान्य अभिव्यक्ति मिलती है । इनमें जीवन का यथातथ्य चित्रण मिलता है । यथार्थवाद व आदर्श वाद की अधिकता तथा कल्पना का अंश कम होना ही इनकी विशेषता है ।"[2]

"लोक नाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक-कथानकों, लोक-विश्वासों और लोकतत्त्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है ।"[3]

"मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हम देखते हैं कि मानव आत्मभिव्यंजना करने वाला प्राणी है । बिना शारीरिक क्रियाओं, मुख-मुद्राओं और कायिक अभिनय से उसे संतुष्टि नहीं होती । जब हम शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति करने में असमर्थ रहते हैं तो स्वाभाविक रूप में हाथों से स्थिति स्पष्ट करते हैं तथा वह भी अभिनय का ही एक रूप है । आदिवासी तो इस प्रकार भाव-विभोर होकर नाच भी उठते थे । सभ्यता और संस्कृति के साथ धीरे-धीरे मानव ने अपनी भावनाओं का नग्न-प्रदर्शन संयत कर लिया और अब वह सभ्य रूप में संयमित अभिव्यक्ति करता है । यही संयत अभिव्यक्ति नाटकों का आदि स्त्रोत मानी जाती है । इनमें शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का योग है ।"[4]

---

2. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोकसाहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान एकेडमी, 1964), पृ0 301

3. नगेन्द्र, भारतीय नाट्य साहित्य (दिल्ली: सेठ गोविन्ददास हीरक जयंती समारोह समीति, 1975), पृ0 84

4. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोकसाहित्य-(इलाहाबाद: हिन्दुस्तान एकेडमी, 1964), पृ0 302

"शास्त्रीय नियमों से बनने वाले नाटकों सेभिन्न वे नाटक या अभिनय जो जन-साधारण को दिखलाते हैं जैसे-कठपुतली का नाच, नौटंकी, रासलीला आदि को लोकनाट्य को संज्ञा दी है ।"[5]

"नाटक आदिम मानव के प्राकृतिक भावों तथा प्रकृति से सम्बन्धित जीवन के कार्यकलापों का अनुकरण है और समय-समय पर उन भावों को गीत, नृत्य और संगीत द्वारा सहज अभिव्यक्ति का प्रतिरूप है ।"[6]

"लोकनाट्यों की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है । लोक जीवन से उसका अंग-अंगी का नाता है । बाह्याडम्बरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतन्त्र विकास केवल "लोकधर्मी नाट्यशैली" में ही संभव है । लोक वार्ता का एक स्वतन्त्र अंग होने के कारण लोकजीवन में इन नाटकों का अपना अनोखा आकर्षण है ।"[7]

वस्तुतः इन लोकनाटकों का प्रमुख उद्देश्य जन-मन का मनोरंजन करना है । इन नाटकों की कथावस्तु अधिकतर पौराणिक कथाओं-रामायण, महाभारत इत्यादि से चुनी जाती हैं । इनका उद्देश्य केवल जन का मनोविनोद करना ही नहीं, अपितु उनका नैतिक उन्नयन करना भी होता है । लोकनाटक में पद्य और गद्य दोनों ही साहित्यिक विधाओं का समावेश रहता है । वास्तव में

---

5. रामचन्द्र वर्म्मा, सं० मानक हिन्दी कोश (भाग-4) (प्रयाग: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965), पृ० 597
6. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोक-साहित्य (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 1971), पृ० 336
7. श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य - परम्परा (वाराणसी: हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, 1959), पृ० 7

लोकनाटक में गीत, नृत्य एवं संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है ।

2.4.5 लोक सुभाषित या लोकोक्तियाँ:

ग्रामीण जन दैनिक जीवन में असंख्य, कहावतें, मुहावरे, सूक्तियाँ, सुभाषित तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं । इन कहावतों में लोक-जीवन की चिरसंचित अनुभूत ज्ञानवर्द्धक-पूंजी विद्यमान रहती है । गाँव में वास करने वाली विभिन्न जातियों की विशेषताओं का दिग्दर्शन इन मुहावरों में हो जाता है । लोक-सुभाषित् के अध्ययन से जन-जीवन के सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक विचारों का चित्रण उपलब्ध रहता है ।

"लोक्तिक का शाब्दिक अर्थ लोक की उक्ति हैं । इससे इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो जाता है, पर आज यह शब्द "कहावत" व अंग्रेजी के "प्रोवर्ब" के रूप में ही रूढ़ हो गया है । जन-जीवन के द्वारा अनुभव के आधार पर बनाई गई धारणाओं को संक्षिप्त शब्दों में जब किसी उक्ति के रूप में कहा जाता है तो वह लोकोक्ति कहलाती हैं ।"[1]

"लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं । अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है । उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है । लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुलिंग (रेडियो एक्टिव) तत्वों की भाँति अपनी प्रखर किरणों को चारों ओर फैलाती है । उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है । लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्कबुद्धि शताब्दियों से संचित ज्ञान से आश्वस्त-सी बन जाती है और उसे अँधेरे में भी उजाला दिखाई देने लगता है, वह अपना कर्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाता है ।"[2]

---

1. सत्यागुप्त, खड़ी बोली का लोकसाहित्य (इलाहाबाद: हिन्दुस्तान-एकेडमी, 1964), पृ० 254
2. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथ्वी पुत्र (दिल्ली: सस्ता साहित्य मण्डल प्रका

"लोकोक्ति जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ़ होती है और फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत सा समय लग जाता है।"[3]

वर्मा ने लोकोक्तियों को ग्रामीण जन का नीतिशास्त्र कह कर पुकारा है उन्हीं के शब्दों में- "लोकोक्तियों में जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। यह ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र है। लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिनसे बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।"[4]

लोक-साहित्य के इस वर्ग के अन्तर्गत् वह स्फुट साहित्य आता है, जिसे कुछ विद्वानों ने "सुभाषित्" कहकर पुकारा है - - - लोकोक्तियाँ लोक-जीवन के अनुभव का सार होती हैं और काव्यात्मक रूप में मौखिक परम्परा से लोक में प्रचलित रहती है।"[5]

वर्म्मा लोकोक्ति से अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "लोक में समान रूप से प्रचलित बात, कहावत, मसला तथा साहित्य में एक अलंकार जो उस समय माना जाता है, जब लोकोक्ति के प्रयोग से काव्य में अधिक रोचकता आ जाती है।"[6]

---

3. कन्हैया लाल सहल राजस्थानी कहावतें-एक अध्ययन (दिल्ली: भारतीय साहित्य मन्दिर, 1958), पृ0 48
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी-साहित्य कोश (बनारस: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं0 2015), पृ0 692
5. श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य: सिद्धांत और प्रयोग (आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर, 1973), पृ0 42
6. रामचन्द्र वर्म्मा, सं0, हिन्दी शब्द कोश-4 (प्रयाग: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965), पृ0 599

"लोक में परम्परागत् रूप में चली आई और समान रूप से प्रचलित उक्ति जो जीवन के अनुभवों और सत्यों को प्रकट करती है। कहावत, आभाणक, अहाना, कथनी, कहनावत, मसला, मिसाल इत्यादि लोकोक्ति ही है।"[7]

"ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनेक लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों, सूक्तियों आदि का प्रयोग करती है। इससे उनकी वचन-चातुरी का पता चलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से किसी उक्ति या कथन में शक्ति आ जाती है और श्रोताओं पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मुहावरों के द्वारा भाषा में चुस्ती आती है और उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। मन-बहलाव के लिए पहेलियों का व्यवहार किया जाता है। बालकगण समुदाय में बैठकर एक दूसरे से पहेलियों को पूछकर बुद्धि की परीक्षा लिया करते हैं। जनता के जीवन में ये लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, मुहावरे, पालने और खेल के गीत बिखरे पड़े हैं। अतः इनको "लोक-सुभाषित्" का नाम दिया गया है।"[8]

वास्तव में लोकोक्तियाँ या कहावतें, शताब्दियों के अनुभव से उपजी हैं। इनमें लोक-जीवन का वर्षों का ज्ञान, नीति व मनोरंजन छिपा है। लोकोक्तियाँ किसी एक व्यक्ति की उक्ति नहीं, अपितु उनमें संपूर्ण समाज की सूक्ष्मतर अनुभूतियों का अंकन मिश्रित है। निस्संदेह इनमें मानव-मनोविज्ञान के अनमोल रत्न संचित हैं।

---

7. गोबिन्द चातक, सं० आधुनिक हिन्दी शब्द कोश (दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन, 1986), पृ० 488

8. कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका (इलाहाबाद: साहित्य-भवन प्राइवेट लिमिटेड, 1970), पृ० 185

उपर्युक्त अध्ययन एवं विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य परम्परा से अनुश्रुत मौखिक रूप से जन-जन में व्याप्त है । किसी भी क्षेत्र अथवा प्रदेश की सामाजिक-सांस्कृतिक गति-विधियों का अध्ययन तथा अनुसंधान करने के लिए वहाँ के लोक-साहित्य का ज्ञान एवं अध्ययन अत्यंत आवश्यक तथा उपयोगी है । लोक-साहित्य की विविध विधाओं का पृथक्-पृथक् अध्ययन करके ही किसी समाज अथवा जाति के जीवन मूल्यों को जाना जा सकता है । निःसंदेह किसी भी क्षेत्र के लोक-साहित्य से लोक-मानस की चेतना और उसकी गत्यशीलता जन्मती तथा वृद्धि एवं विकास पाती है । यही कारण है कि लोकसाहित्य को लोक का साहित्य कहा जाता है चूँकि यह मानव के संग ही उत्पन्न होता तथा पनपता है ।

IA7233
Bundelkhand University Library